ऋग्वेद में सपत्नी संव्यवहार

मुरली मनोहर दाधीच, *शोधार्थी, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर*

Abstract

ऋग्वैदिक काल प्राचीन भारतीय इतिहास के सभी आयामों जैसे समाज, धर्म, संस्कृति यहां तक की राजनीति को भी प्रभावित करता है। इस दृष्टि से भारतीय इतिहास के अवलोकन में ऋग्वेद बहुत महत्वपूर्ण स्रोत हो जाता हैं। इतिहास में निरंतर उभर रही नवीन प्रवृत्तियों ने इस महान कृति के पुनर्विलोकन के महत्व को और बढ़ा दिया हैं। मनुष्य जाति के इतिहास में बहुविवाह प्रचलन पर काफ़ी साहित्य उपलब्ध हैं। इस प्रथा की समाजशास्त्रीय वार्ता का निष्कर्ष इसे कई मायने में प्राकृतिक बताती हैं और कुछ इसका निषेध भी करती हैं।[i] ई. ओ. विल्सन ने मनुष्यों को मध्यम रूप से बहुविवाह वांछित (मॉडरेट पोलोगेमस) जाति कहा है। एलन एस. मिलर के अनुसार, "मनुष्य प्राकृतिक रूप से इस प्रकार का पॉलीगाइनियस है कि वह न तो गोरिल्ला जितना पॉलीगाइनियस है और न ही गिब्बन जैसा मोनोगोमस, वह इन दोनो के मध्य कही है।"[ii] किंतु समाज शास्त्रीय वार्ता के इतर भारत में इसके ऐतिहासिक पक्ष को जानने के आरंभिक प्रमाण हमें ऋग्वेद से ही प्राप्त होते हैं। जहां आर्थिक रूप से संपन्न परिवार के पुरुष कई विवाह करते थे।[iii] उस काल में स्थापित रूप से यह एक परंपरा थी, कहना बहुत मुश्किल हैं, क्योंकि यह प्रभावशाली परिवारों तक ही सीमित थीं। भरत सिंह उपाध्याय के अनुसार, बहुपत्नी प्रथा ऋग्वैदिक काल में सेनापतियों, राजपरिवारों, प्रभावशाली ऋषियों के मध्य बहुत सामान्य थी।[iv] दूसरी ओर इसका प्राकृतिक आधार इसे सामान्य सिद्ध करता हैं। इन दोनों प्रतिकथनों से उत्पन्न विवाद से परे यह महत्वपूर्ण हो जाता हैं कि ऋग्वैदिक काल में यह प्रथा अवश्य ही समाज के उच्च वर्ग में प्रचलित थीं। इतिहास में समय के साथ उच्च वर्ग की परंपराएं बाद में अन्य वर्गों द्वारा भी अपना ली जाती हैं। इस संदर्भ में सपत्नियाँ और उनसे संबंधित शोध नारी को तत्साम्यिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करते हैं। सपत्नी का अर्थ हैं, दो या अधिक महिलाओं का एक ही पति होना, सामान्यतः समाज में सौतन, सौत कहा जाता हैं। हमारे शोध का विषय इस कालखंड (ऋग्वेद) में सपत्नियों के बीच के संव्यवहारो का अवलोकन करना हैं, साथ ही उसके मनौवैज्ञानिक पक्ष को भी समझने का प्रयास करना हैं।

Key words : सपति, सपत्नी,बहुपति, पॉलीगाइनियस, मोनोगोमस, पॉलीगेमस

साहित्य का अध्ययन एवं शोध प्रविधि :

इस शोध हेतु ऋग्वेद का आधारभूत ग्रंथ के रूप में अध्ययन किया गया है, साथ ही वैदिक वांग्मय, टीकाएं, स्मृतियां व विभिन्न संस्कृत नाटकों, जिनमें शोध संबंधित सामग्री उपलब्ध हैं, आदि का भी सारगर्भित अवलोकन किया गया हैं। स्त्री विमर्श के विश्लेषणात्मक लैंस के परिपेक्ष्य में मंत्रों और सूक्तों पर शोध के द्वारा सपत्नियों के व्यवहार का अध्ययन किया गया हैं। शोध की प्रकृति को देखते हुए कुछ मनोविज्ञान के ग्रंथों तथा शोध पत्रों की सहायता ली गई हैं। कुछ विशेष वैदिक ऋचाओं और उनके मंत्रों से संबंधी पुराने शोध पत्रों और नारीवादी साहित्यों का भी समुचित अध्ययन किया गया हैं, साथ ही संबंधित सामग्री का इस शोध पत्र में उपयोग किया गया हैं। विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि के अनुरूप सूचनाओं और तथ्यों का अध्ययन कर उसका देश काल

परिस्थितियों में विश्लेषण किया गया है, साथ ही तत्कालीन स्त्रियों के मनोवैज्ञानिक पक्ष को जानने का भी प्रयास किया गया है।

परिचय:

विश्व के अधिकतर समाजों में बहुविवाह परंपरा किसी न किसी रूप में पाई जाती रही है। इथिनोग्राफिक एटलस कोडबुक द्वारा विश्व की 1231 प्राचीन व अद्यतन संस्कृतियों के अध्ययन से प्राप्त तथ्यों के अनुसार, विभिन्न संस्कृतियों में विवाह के विभिन्न पैटर्नो में 84.6% बहुपत्नी प्रथा पाई गई, इसके विरुद्ध मात्र 0.3% संस्कृतियों में ही बहुपति प्रथा मिलती है, शेष 15.1% एकांगी अर्थात् एक युगल पति – पत्नी प्रथा मिलती है।[v] सामाजिक वैज्ञानिक डेविड पी. बाराश स्त्री पुरुषों को समान रूप से बहुविवाह इच्छित (पॉलीगेमस) मानते है। इसीलिए विधि द्वारा एकल विवाह को मान्यता देने को रिचर्ड अलेक्जेंडर (1979) ने सामाजिक रूप से थोपा एकल विवाह (सोशली इंपोज्ड मोनोगेमी) कहा हैं।

अधिकतर समाजों में पुरुष ही अधिक पत्नियां रखते थे, नाममात्र संस्कृतियों में ही एक पत्नी के कई पति (सपति) के साक्ष्य मिले है। इसके पीछे मुख्य कारण यह हैं कि सपत्नियों के गर्भधारण पर दूसरी पत्नियां अन्य सभी कार्यों का निष्पादन कर लिया करती थी, जिससे दैनिक जीवन बाधित नहीं होता था, लेकिन सपति द्वारा एक बार पत्नी को गर्भवती करने के पश्चात अन्य पतियों का दैनिक जीवन बाधित हो जाता है। मिरियम जीइटजन की पुस्तक पॉलीगेमी ए क्रॉस कल्चरल एनालिसिस के अनुसार, "पुरुष जितनी तीव्रता से कई महिलाओं को आकर्षित करना चाहता है, उतनी तीव्रता से महिला अन्य पुरुषों को आकर्षित नही करना चाहती। पुरुष की स्थिति (स्टेटस) जितनी बेहतर होती थी, अधिकतर उसकी पत्नियों की संख्या भी उसी अनुपात में होती थी, लेकिन महिला के संबंध में ऐसा न था।"[vi] प्राचीन ग्रीक, चीन, नेपाल, तिब्बत और भारतीय समाज में ही हमें कुछ उदाहरण बहुपति के देखने को मिलते हैं। अधिकतर बहुपति विवाहों में सपति हमेशा भाई ही मिलते है। इसका मुख्य आधार आर्थिक अधिक प्रतीत होता है, कृषिहर समाजों में भूमि के अधिक विभाजन को रोकने के लिए ऐसी प्रथाओं का प्रसार हुआ।

ऋग्वेद में बहुविवाह प्रचलित थे, इन सब में भी बहुपत्नी प्रथा ही प्रचलित थीं। एक से अधिक पति के साक्ष्य नहीं प्राप्त हुए हैं। जहां आर्थिक रूप से संपन्न परिवार के पुरुष कई विवाह करते थे। उपाध्याय के अनुसार, बहुपत्नी प्रथा ऋग्वैदिक काल में सेनापतियों, राजपरिवारों, प्रभावशाली ऋषियों के मध्य बहुत सामान्य थी। इस कारण इसका अध्ययन आवश्यक हो जाता है। संपूर्ण ऋग्वेद में 2 सूक्तों (12 मंत्र) को केंद्र में रखकर ही सपत्नी प्रथा का अध्ययन किया जाना संभव हैं, इसके अलावा अन्य कुछ मंत्र अवश्य ही इसकी पुष्टि में सहायक हैं।[vii] लेकिन स्वतंत्र स्त्रोत के रूप में 10 वे मंडल के 145 और 159 सूक्त ही हैं। यह भी ध्यातव्य हैं कि प्रथम और दशम मंडल सबसे बाद में जोड़े गए हैं अतः सपत्नी प्रथा को ऋग्वेद के अंतिम काल से भी संबद्ध किया जा सकता हैं।

इंद्राणी और शची पौलोमी : सपत्नी शोध के स्त्रोत के रूप में ऋग्वेद में 10 वें मंडल में शची पौलोमी (10.159.1 से 6) और इंद्राणी (10.145.1 से 6) के केवल 2 सूक्त ही प्राप्य हैं। प्रश्न यह उठता हैं कि ये दोनों सूक्त दो अलग - अलग ऋषिकाओं के द्वारा लिखे गए हैं अथवा इंद्राणी और शची एक ही ऋषि के अलग - अलग नाम हैं। इन दोनों को एक ही मानने वालों में अमरकोश का नाम आता हैं। "शची पौलोमी एक ही नाम हैं, जिसे इंद्राणी भी कहा गया हैं" (अमरकोश - 89)। इस आधार पर डॉ. पी. सी. साहू ने दोनों सूक्तों की रचनाकार एक ही ऋषि को मान लिया।[viii] ऋग्वेद में विषय के आधार पर सूक्तों की रचना हुई हैं, यदि ये दोनों ऋषिकाएं

एक ही है, तो विषय के आधार पर अवश्य ही ये एक ही सूक्त में समाहित हो सकते थे, पृथक सूक्त की आवश्यकता नहीं थी। और रही बात अमरकोश के वाक्यांश की तो इंद्राणी इंद्र की मुख्य पटरानी की उपाधि होती थी, जो कदाचित स्थाई न थी। यह संभव है कि सूक्त रचना के दौरान इंद्राणी की उपाधि शची के पास न होकर उस ऋषि के पास रही हो जो इंद्राणी नाम से लिख रही थी और संभवतया किसी समय यह उपाधि शची के पास भी हो। दूसरी ओर शची पौलोमी के विषय में भी साहित्य में बहुत सी जानकारी मिलती हैं। ऋग्वेद में इसे शची कहा गया हैं, जो इंद्र की पत्नी हैं। शची पौलोमी दोनों का साथ उल्लेख जैमिनीय ब्राह्मण में मिलता हैं (3.199)। हरिवंश में एक संदर्भ आता हैं कि शची, पुलोमा नामक राक्षस की पुत्री थी, उसी के पितृ नाम पर उसका नाम शची पौलोमी पड़ा। (3.71)। इंद्र और शची पौलोमी का पुत्र जयंत का भी उल्लेख हैं (3.79)।[ix] संभव है कि इंद्राणी और शची पौलोमी दोनों सपत्नी हो और ऋग्वेद के कुछ हद तक लोकतांत्रिक वातावरण ने अपने - अपने स्तर पर दोनों को अपनी बातें रखने का अवसर मंत्रों के माध्यम से दिया।

ऋग्वेद में दोनों स्वयं को इंद्र की पत्नियां बताती हैं और अपने पति के समक्ष श्रेष्ठ दिखना चाहती हैं। लेकिन दोनो में असमानता के कुछ तत्व भी दिखाई देते हैं, जैसे शची स्वयं की प्रतिभा और श्रेष्ठता के बल पर अपने पति को अपने वश में रखती हैं वहीं इंद्राणी में एक ईर्ष्या का भाव दिखाई पड़ता हैं, वह अपनी सपत्नियों को तंत्र विद्या के माध्यम से नुकसान पहुंचा कर इंद्र पर पुनः अपना प्रभाव स्थापित करना चाहती हैं। दोनों कार्मिक अनुष्ठान द्वारा इंद्र पर प्रभाव बढ़ाना चाहती हैं, लेकिन दोनो के मार्ग अलग हैं। शची आर्यों के तरीकों से यज्ञ द्वारा असपन (शत्रुरहित) होना चाहती हैं। दूसरी ओर इंद्राणी किसी औषधि से तंत्र - मंत्र द्वारा अपनी सपत्नी को दूर करना चाहती हैं। परवर्ती साहित्यों के अनुसार वह उसमे सफल भी हुई। शची पौलोमी में एक विजेता की भावना हैं। *"अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः"* अर्थात् सभी पत्नियों को परास्त करते हुए मैंने अपने पति को वश में कर लिया हैं। वहीं इंद्राणी में यह आत्मविश्वास नहीं दिखता हैं। ऐसी कामना करती हैं कि अन्य उत्कृष्ट स्त्रियों में भी वह उत्कृष्टतर हो जाए और अन्य सपत्नियाँ अधमों में अधमतर हो जाए, *"अर्था सपत्नी या ममाऽधरा साधराभ्यः"*। यदि ये दोनों एक ही व्यक्तित्व होती तो यह बड़ा अंतर स्पष्ट न होता।

इंद्राणीकर्म संस्कार : सपत्नियों में "इंद्राणी" के लिए आपसी प्रतिस्पर्धा हुआ करती थी। इंद्राणी मुख्य पत्नी या पटरानी से संबंधित संस्कार था। सांखायन गृह सूत्र (1.11.5) के अनुसार, विवाह समारोह के दौरान 4 या 8 महिलाएं जिनके पति जीवित हैं, अपने पति को स्वादिष्ट व्यंजन, सब्जियां और सुरा द्वारा आकर्षित करने का प्रयास करती हैं। अंततः जिससे पति सर्वाधिक प्रसन्न होता हैं उसे ही इंद्राणी घोषित कर दिया जाता हैं। इसे इंद्राणीकर्म संस्कार कहा हैं। ब्लूमफील्ड इस प्रकार के संस्कार को महिलाओं को विधवा बने रहने के पीड़ा से बचाने के प्रयास की तरह देखते हैं। इसके लिए वे तैत्तिरीय ब्राह्मण (3.7.5.10) को संदर्भित करते हुए इसे "इंद्राणीवाविधाभुयसम" कहते हैं।[x] डॉ. ई. हास इंद्राणी को गृह की संरक्षिका मानते हैं।[xi] एस. ए. डांगे के अनुसार, ऐसी पत्नी जो पति को सबसे अधिक दैवीय पुत्र दे सके, इंद्राणी के लिए चुनी जाती थीं।[xii] कारण जो भी लेकिन "इंद्राणी अथवा मुख्य पत्नी नियुक्ति की प्रथा उन सभी में रही होगी जो बहुविवाह करते थे।" अवश्य ही नियुक्ति से संबंधित मानदंड अलग-अलग होंगे कुछ सौंदर्य प्रिय पति सुंदरता को आधार बना कर, कुछ युद्ध प्रिय अथवा कार्मिक पति पुत्रों की प्राप्ति को लेकर और कुछ घरेलू कार्यों में दक्षता को लेकर अपनी मुख्य पत्नी चुनते होंगे।

इंद्राणी चयन एवं प्रतिस्पर्धा :

इंद्राणी चयन में बाह्य हस्तक्षेप था अथवा यह पूर्णतः पति का स्वतंत्र अधिकार था। शची पौलोमी भले ही दैत्यराज पुलोमा की पुत्री थी, लेकिन इंद्राणी के लिए यह पर्याप्त नहीं था अर्थात् राजनीतिक संबंधों का पारिवारिक

संबंधों से सीधा संपर्क नहीं दिखाई देता हैं। हालांकि परवर्ती काल में महिषी अथवा प्रमुख रानी की नियुक्ति में राजनीतिक विवाहो का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता हैं, लेकिन निश्चित ही निर्णय में अंतिम अधिकार पति का ही होता होगा। यह भी संभव हैं उस पर परिवार व बंधु - बांधवों का भी कुछ प्रभाव हो, इसका कारण कबिलाई संस्कृति में पाए जाने वाला मजबूत पारिवारिक आधार हैं।

ऋग्वैदिक काल में सपत्नियों के आचार - विचारों को विविध परिपेक्ष्य में समझा जा सकता हैं। सपत्नियां अपने पति को अपनी और आकर्षित रखने के लिए अवश्य ही श्रृंगार का प्रयोग करती होगी। यद्यपि सपत्नी संव्यवहारों में इसकी चर्चा नहीं है फिर भी ऋग्वेद में अन्य स्थानों पर केश रचना, अनुलेप या अंगराग (त्वचा पर कांति हेतु), सुंदर वस्त्र, आभूषण आदि की चर्चा की गई हैं। श्रृंगार के अतिरिक्त शारीरिक सौंदर्य का भी अपना महत्व था। सुंदर मुख और उभरे अंग सौंदर्य के पर्याय होते थे। एक ऋषिका सूर्या , जो विवाह सूक्त की रचनाकार मानी जाती हैं , ने विश्वावसु से उभारों वाले अंगों से युक्त कन्या की कामना करने को कहा हैं (10.85.22)। सपत्नियों में इन्हीं उपादानों में एक प्रतिस्पर्धा संभावित हैं।

सपत्नियों में एक और ईर्ष्यात्मक भाव दिखाई देता हैं। इंद्राणी में यह भाव इतना गहन हैं कि मंत्रों में अपनी सपत्नी का नाम भी लेना पसंद नहीं करती हैं।

नहयस्या नाम गृभ्णामि नो अस्मिन् रमते जने । परामेव परावतम सपत्नीं गमयामसि // (ऋ. 10.145.4)

अर्थात् मैं इस सपत्नी का नाम भी नहीं लेती, किसी को भी सपत्नी प्रिय नहीं होती। मैं उसे दूर से भी दूर भेज देती हूं (यदि मेरे नियंत्रण में हो तो)। इंद्राणी की इस प्रकार की राय उस साधारण पत्नी का अंतःमन हैं, जो अपने पति को किसी अन्य स्त्री के साथ नहीं देखना चाहती। इसी प्रकार वह अपनी सपत्नी को अधम से अधमतर तथा स्वयं को अन्य सपत्नियों से श्रेष्ठतम बनाने की चेष्टा रखती हैं (ऋग्वेद 10.145.3)। इस ईर्ष्या में एक पीड़ा का भाव भी छिपा हैं, एक ऋषि भूख, नग्नता, अनिद्रा के कारण हो रहे उसकी पसलियों की पीड़ा को प्रतिद्वंद्वी सपत्नियों के द्वंद से तुलना करता हैं (ऋग्वेद 10.33.2 तथा 1.105.8)।

यदि एक सपत्नी दूसरी को हराने में सफल रहती हैं, तो उसमें एक विजेता का भाव दिखाई देता है। शची पौलोमी की आत्मगौरव की अनुभूति में उस विजय को देखा जा सकता हैं। सभी सपत्नियों को परास्त कर वह अपने पति को वश में कर विजेता की भांति लिखती हैं। *अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः* (10.159.1)। अपने पति को जीतने की भावना से वह इतनी गर्व से भरी दिखाई पड़ती हैं

अहं केतुरहम मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी। *ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत्* // (10.159.2)

"मैं ही सबकी ज्ञापक हूँ। सभी अवयवों में प्रधान मूर्धा (मस्तक) के समान में सर्वोपरि हूँ। मैं क्रोधाविष्ट पति को प्रिय वचन बोलने वाला बना देती हूँ। मुझे श्रेष्ठ जानकर मेरे पति मेरे कार्यों का अनुमोदन करते हैं तथा मेरे अभिमत के अनुसार ही चलते है"। इस प्रकार अपने पति को विजित करने की भावना कदाचित उसके लिए गर्व से भरे होने का क्षण था, जिससे तत्कालीन प्रत्येक सपत्नी आनंदित होना चाहती हैं।

सपत्नियाँ एक दूसरे को नीचा दिखाने और स्वयं को अपने पति के सामने श्रेष्ठ प्रदर्शित करने के लिए स्वयं की प्रतिभा का तो प्रयोग करती ही थी, साथ ही यदि किसी बाह्य कारकों से उसे समुचित लाभ मिलता तो वह भी करने में पीछे नहीं रहती। ऋग्वेद में वर्णित दोनों ऋषिकाओं ने बाह्य कर्मकांड और तंत्र - मंत्र का सहारा लिया। ऋग्वैदिक समाज में यज्ञ का अपना महत्व तो था ही, शची पौलोमी लिखती हैं, "जिस हवि से इन्द्र उत्तम

तेज से युक्त (द्युम्नी) हुए हैं और मेरी ओर इतना आकर्षित हुए हैं, हे देवों! मैंने ही वह यज्ञ किया है। उस यज्ञ से मैं असपन (शत्रुरहित) हुई हूँ(10.159.4)" इस याज्ञिक कर्म का उद्देश्य अपनी सपत्नियों से निदान ही था।

दूसरी ओर इंद्राणी एक औषधि द्वारा कुछ तांत्रिक उपायों से अपनी सपत्नी को बाधा पहुंचाना चाहती हैं, जिससे वह पति का प्रेम प्राप्त कर सकें (10.145.1)। इन क्रियाओं से वह सपत्नी को अधमतर, स्वयं को श्रेष्ठतर बनाने(ऋ.10.145.3) तथा उसे बलहीन, कुरूप(ऋ .10.145.5)करने की प्रार्थना करती हैं।

वैदिक साहित्यों में इस प्रकार के तांत्रिक कर्म जिससे दूसरों को क्षति पहुंचाई जाए, 'अभिचार' कहलाते हैं।[xiii] इसमें दो महत्वपूर्ण बातें निकलकर आती है- एक, तांत्रिक प्रक्रियाएं अनार्य मानी जाती हैं, संभवतः आर्य - अनार्य संक्रमण में यह कई आर्यों को भी आकर्षित करती हैं और भविष्य में तो सम्पूर्ण अथर्ववेद इन्हीं क्रियाओं पर लिखा गया। इंद्राणी जिसकी पृष्ठभूमि आर्य संस्कृति से रही हैं, ने तंत्र विद्या (अनार्य तरीके) का सहारा लिया। संभव हैं इंद्राणी भी इसी कारण अभिचारों से परिचित हुई और ऐसा भी माना जाता हैं कि वह इन क्रियाओं में इतनी सिद्धहस्त हो गई कि उसे देवी का दर्जा प्राप्त हुआ। पैप्पलादसंहिता में एक औरत अपनी उम्र के कारण आई चेहरे की झुर्रियों के निदान हेतु इंद्राणी की आराधना करती हैं (19.20.15)। दूसरी, शची पौलोमी जो दैत्यराज पुलोमा की पुत्री हैं, जो स्वयं अनार्य संस्कृति में पली बढ़ी हैं, ने कार्य सिद्धि हेतु यज्ञ (आर्यों का तरीका) अपनाया, ऐसा माना जाता हैं कि नए धर्मांतरित लोग नए धर्म में आस्था दिखाने हेतु ऐसी बाह्य क्रियाओं पर अधिक बल देते हैं। हालांकि यह हमेशा सत्य नहीं है, लेकिन शचि पौलोमी द्वारा यज्ञ क्रिया पर दिखाया गया यह विश्वास या तो उसकी नए धर्म पर आस्था थी या फिर पति पक्ष के सांस्कृतिक मूल्यों पर उसका विश्वास।

पुत्र - पुत्रियों संबंधी विचार :

सपत्नियों का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष उनके पुत्रों पुत्रियों संबंधित विचारों में दिखाई देता हैं। शची अपने पुत्र को शत्रु विनाशक तथा पुत्री को सर्वोत्तम शोभा और सौंदर्य से शोभित व गृह कार्यों में दक्ष बताती हुई गर्व करती हैं (ऋग्वेद 10.159.3)। हरिवंश में इंद्र और शची पौलोमी का पुत्र जयंत का उल्लेख मिलता हैं (3.79), वह वीर यौद्धा के रूप में साहित्य में उद्धृत हैं। ध्यातव्य हैं कि गर्वोक्ति में माता अपने पुत्र व पुत्री को समान महत्व देती हैं। दूसरी ओर इंद्र - इंद्राणी संवाद सूक्त (ऋग्वेद 10.86.4) में इंद्राणी इंद्र को वृषाकपि (इंद्राणी की सपत्नी का पुत्र) के बारे में अनिष्ठ और अमंगल शब्दों के माध्यम से दूर करना चाहती हैं। अपनी संतानों से प्रेम तथा सौतेले पुत्र - पुत्रियों से ईर्ष्या का भाव आज भी समाज का एक सत्य हैं। यह न केवल स्त्री मनोभाव हैं, अपितु इसे मानव - मनोभाव के रूप में देखना अधिक श्रेयस्कर हैं। स्वयं की संतानों पर गर्व और सपत्नी की संतानों से ईर्ष्या, समय के सापेक्ष मानव में भावनात्मक स्थायित्व का सूचक हैं।

निष्कर्ष : किसी भी काल खंड में सपत्नियों के मनोविज्ञान की तुलना दूसरे काल खंड से करने पर परिणाम अलग हो सकते हैं, क्योंकि मनुष्य की प्रवृत्ति उसे सदैव वर्तमान के आयाम से बाहर झांकने से बाधित करती है अर्थात् वर्तमान का संपुट सदा उसके निष्कर्षों में दिखाई देता हैं। आदिम समाज से ऋग्वैदिक काल तक लिंग भेद उतना व्यापक न रहा होगा। ऋग्वेद के भी आरंभिक साहित्य में हमें इस प्रकार के ही संकेत मिलते हैं। सपत्नी प्रथा की झलक भी 10 वें मंडल में स्पष्ट होती हैं। उस समय की सपत्नियों का प्रतिरोध भी अवश्य ही परवर्ती स्त्रियों से अधिक होगा, जैसे - जैसे बहुविवाह प्रथा ने एक संस्थागत स्वरूप लेना आरंभ किया तब सपत्नियों का व्यवहार एक दूसरे के प्रति उतना वैमनस्य पूर्ण न रहा होगा, क्योंकि प्रथा का संस्थागत स्वरुप समाज में स्वीकार्यता पैदा करता हैं और बाद में वही संस्कृति बन जाती हैं। अतः बाद में उच्च वर्ग में पुत्रियों को उसी प्रकार का प्रशिक्षण देना आरंभ किया कि वह अपनी सौत के साथ समायोजन कर लें। नारीवादी दृष्टिकोण से ऋग्वैदिक नारी की

तुलना आज की नारी से करना अधिक सार्थक इसलिए माना जाता हैं, क्योंकि जिस प्रकार से तात्कालिक नारी आदिम स्वतंत्रता तथा उसके भविष्य में आने वाले तथाकथित सांस्कृतिक मूल्यों (सांस्कृतिक परतंत्रता) के बीच के संक्रमण काल में फंसी हुई थी, उसी प्रकार आज की नारी भी सांस्कृतिक परतंत्रता और आधुनिक स्वतंत्रता (नारी उन्मुक्ति) के बीच फंसी हुई हैं।

[i] Barash, D.P. *Out of Eden: Surprising consequences of polygamy*. New York: Oxford University Press, 2016.
[ii] Miller, Alan S., and Satoshi Kanazawa. *Why Beautiful People Have More Daughters*. Penguin, 2007, p. 86.
[iii] Ghosh, Ila. *Rgvedic Rsikas : life and philosophy.* Delhi: Eastern book linkers, 2007, P.194
[iv] Upadhyay , B.S. , WOMEN IN RIGVEDA., S Chand, New Delhi; Revised edition (May 1, 1974), p. 101 and 107
[v] White, D. R., & Brudner-White, L. A. (1988). The Murdock legacy: the ethnographic atlas and the search for a method. *Behavior Science Research*, 22(1-4), 59-81. Ethnographic Atlas Codebook Archived 18-11-2012 at the Wayback Machine derived from George P. Murdock's Ethnographic Atlas recording the marital composition of 1,231 societies from 1960 to 1980.
[vi] Zeitzen, Miriam Koktvedgaard. Polygamy: A cross-cultural analysis. Routledge, 2020.
[vii] ऋग्वेद में बहुविवाह (बहुपत्नी प्रथा) के अन्य साक्ष्य विभिन्न मंत्रो 10.95.5-6, 1.104.3, 3.1.10, 8.19.36, 1.105.8, 3.6.4 आदि में मिलते हैं।
[viii] SAHOO, P. C. "THE ENCHANTRESS-CONSORT OF INDRA." *Bulletin of the Deccan College Research Institute*, vol. 58/59, 1998, p. 273–77.
[ix] ऐसा ही संदर्भ हमें ब्रहमाण्ड पुराण (2.6.23-24) से भी मिलता हैं। सायन ने भी ऋग्वेद 10.159 टीका के परिचय मे ऐसा ही संदर्भ प्रस्तुत करते हैं।
[x] *Bloomfield, M.,* 'contribution to the interpretation of the veda', *ZDMG* 48, 553, f.n.2 (1894).
[xi] *Haas Dr., E., 'Die heirathsgerbrauche der alten Inder nach den Grhyasutra*'. *Indische studien* – V Berlin, 1862, p. 293
[xii] *Dange, S.A., '*Indrani karma', *Journal of the Ganganath Jha Kendriya Vidhyapith*, 29 (1-4), Allahabad, 1973. P.227
[xiii] *SAHOO, P. C. "A STUDY ON ABHICĀRA RITES IN THE VEDA AND ITS RELEVANCE TO PRESENT DAYS SOCIORELIGIOUS LIFE." Bulletin of the Deccan College Research Institute, vol. 68/69, 2008, pp. 361.*